अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग

उपाध्याय विद्यानन्द मुनि

अज्ञान तिमिर है और ज्ञान आलोक । अज्ञान मृत्यु है और ज्ञान अमरता। अज्ञान विष है और ज्ञान अमृत । अज्ञान का आवरण रहते मनुष्य किसी बात को जान नहीं सकता । अन्धकार में चलने वाला किसी कूप-वापी-तगाड़ में गिर सकता है । किसी विषधर नाग पर पांव रख कर विषकीलित हो सकता है और आगे का पथ न सूझने से मार्गच्युत भी हो सकता है; परन्तु जिसने दीपक हाथ में लिया है वह सुखपूर्वक पथवर्ती कील-कण्टकों से अपनी सुरक्षा करता हुआ गन्तव्य ध्रुवों को पा लेता है । इसीलिये प्रकाश, आलोक प्राणियों को प्रिय प्रतीत होता है। पूर्व दिशा से आलोक-किरण के दर्शन करते ही पक्षी आनन्द-कलरव करने लगते हैं, नीड़ छोड़ कर विस्तृत गगन में उड़ चलते हैं। क्योंकि प्रकाश से उन्हें दृष्टि मिली है, अभय मिला है। ऋषियों ने ऋग्वेद में उषा की स्तुति की है क्योंकि उसी के अरुणगर्भ से सूर्य का जन्म होता है। वे अंजलिबद्ध होकर परमात्मा की प्रार्थना करते हुए याचना करते हैं– "तमसो मा ज्योतिर्गमय" हे प्रभो ! ले चल हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर क्योंकि प्रकाश ही पदार्थों से साक्षात्कार में सहायक है ।

अज्ञानी व्यक्ति नदी में पाँव रखता है तो डूबने का भय है, यदि यज्ञवेदी पर बैठता है तो जल जाने का डर है, यदि उसे फल खरीदने भेज दिया जाय तो वह मधुर फलों को छोड़कर कटु-तिक्त-कषाय खरीद लेगा, क्योंकि उसे न अमृत का ज्ञान है और न विष की परीक्षा । वह हिताहित ज्ञान से शून्य है । इसीलिए समाज में : मनुष्यजाति में : पाठशालाओं की विधि है। अनेक विषय उसे विद्याशालाओं में पढ़ाये जाते हैं और एक प्रकार से लौकिक ज्ञान प्रदान कर संसार-यात्रा के लिये उपयुक्त किया जाता है। पशु-पक्षी भी अपने-अपने अपत्यों को जातिगत ज्ञान की परम्परा प्रदान करते हैं । इस प्रकार कुछ ज्ञान उसे घर से, कुछ बाहर से प्राप्त हो जाता है । यह ज्ञान के विषय में लौकिक अपेक्षा से किया गया सामान्य निर्वचन है ।

"हितानुबंधी ज्ञानम्" ज्ञान के विषय में यह अत्यावश्यक परामर्श है कि वह हितानुबंधी होना चाहिए, क्योंकि इसे आलोक अथवा प्रकाश कहा है । प्रकाश अग्नि से, सूर्य से और दीपक से भी मिलता है। यदि कोई दीपक से पदार्थ दर्शन के स्थान पर अपने वस्त्र जला ले तो यह उसका दुरुपयोग होगा। यदि विज्ञान से विध्वंसक प्रक्षेपास्त्रों का निर्माण किया जाता है और निर्माण अथवा मानव-कल्याण में उसको विस्मृत किया जाता है तो यह दीपक लेकर कुएं में गिरने के समान होगा। इसे ही कहते हैं "हेयोपादेय विज्ञान" यदि ज्ञान–प्राप्ति के पश्चात् भी इतनी उपलब्धि नहीं हुई तो शास्त्रपाठ शुकपाठ ही रहा। "व्यर्थ श्रमः श्रुतौ" कहते हुए "क्षत्रचूड़ामणि" कार ने इसकी भर्त्सना की है । वस्तुतः जिसने अन्न को अपना रस, रक्त, माँस बना लिया है उसी ने आहार का परिणाम प्राप्त किया है। किन्तु जिसके आमाशय में अजीर्ण दोष है, वह उदर में रखने मात्र से अन्नभुक्ति के आरोग्य-परिणाम को प्राप्त नहीं कर सकता । जो ज्ञान को ऊपर से ओढ़ कर घूमता है, उसके उत्तरीय को कभी कोई उतार ले सकता है । परन्तु जिसने ज्ञान को स्वसंपत्ति के रूप में उपार्जित किया है उसे कोई छीन नहीं सकता। अतः ज्ञानोपार्जन में ज्ञान की पवित्रता के साथ-साथ उसे अपने से अभिन्न प्रतिष्ठित करने की महती आवश्यकता है। जब अग्नि और उष्णता, जल और शीतलता के अविनाभावी संबंध के समान गुण और गुणी एकरूप हो जाते हैं तभी उनमें अव्यभिचारीभाव का उदय होता है। ज्ञानी और ज्ञान भी आधाराधेय मात्र न रह कर प्राण सम्पत्ति होने चाहिये । ऐसे ज्ञान की उपासना में मनुष्य को शास्त्राग्नि में प्रवेश करना पड़ता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह ज्ञान मनुष्य भव में ही हो सकता है, अतः प्राप्त करने में आलस्य नहीं रखना चाहिए। आचार्य गुणभद्र ने आत्मानुशासन में कहा है कि "प्रज्ञान दुर्लभ है और यदि इसे इस जन्म में प्राप्त नहीं किया गया तो अन्य जन्म में यह अत्यन्त दुर्लभ है।" क्योंकि अन्य जन्म मनुष्य पर्यायवान् हो, यह लिखित प्रमाणपत्र नहीं है। अतः एक जन्म का प्रमाद कितने इतर जन्मों के अन्तर विशोधनीय हो, यह अनिर्वचनीय है। प्राणान्त होना ही मृत्यु नहीं है, प्रमाद ही मृत्यु है। अप्रमत्त को मृत्यु एक बार आती है परन्तु प्रमादी प्रति क्षण मरता है। "प्रमादेसत्याधः पातात्" यही कहता है।

ज्ञान की पिपासा कभी शान्त नहीं होती। ज्ञान प्रति क्षण नूतन है, वह कभी जीर्ण या पुरातन नहीं पड़ता। स्वाध्याय, चिंतन, तप, संयम, ब्रह्मचर्य आदि उपायों से ज्ञान-निधि को प्राप्त किया जाता है। जो चिंतन के समुद्र पी जाते हैं, स्वाध्याय की सुधा का निरन्तर आस्वादन करते रहते हैं, संयम पर सुमेरु के के समान अचल-स्थिर रहते हैं, वे ज्ञान-प्रसाद के अधिकारी होते हैं। ज्ञानवान् सर्वज्ञ हो जाता है। जिस विषय का स्पर्श करता है, वह उसे अपनी गाथा स्वयं गा कर सुना देता है। दर्पण में जैसे बिम्ब दिखता है, वैसे उसकी आत्मा में सब कुछ झलकने लगता है।

मनुष्य के जीवन में ज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान है। ज्ञान ही मानव और पशु में अन्तर बताता है। विवेकहीन मानव पशु के तुल्य कहा गया है। विद्या की उपलब्धि पुस्तकों से होती है। बालक पुस्तकों से ही ज्ञान का अर्जन करता है। इसलिए ज्ञानार्जन में पुस्तक अन्यतम साधन है। अनुभव से भी ज्ञान प्राप्ति होती है किन्तु वह दुरूह और द्रव्यसाध्य होने से गरीबों को सुगम नहीं होता, जबकि पुस्तकें कम पैसे से ही धनी, निर्धन सबको देश, विदेश, इहलोक, परलोक, विज्ञान, साहित्य, धर्म और संस्कृति का ज्ञान सुगमता से प्राप्त कराती हैं। □

तीन मुक्तक

वन्द करें अब केवल चर्चा कथनी करनी एक करें।
कर्म-कलश में भाव-नीर जिनवर का अभिषेक करें॥
गोष्ठी, सम्मेलन से धर्म-प्रसार नहीं होता—
अपने सिद्धान्तों का पालन पहले हम सविवेक करें।

अपने प्राण सभी को प्यारे सबको हक़ है जीने का।
सबको उचित मूल्य चाहिये अपने खून पसीने का।
हम न किसी को दुःख पहुँचायें न ही किसी का हक़ छीने।
यत्न करें हम दिल के घाव स्नेह-सूत्र से सीने का।

आवश्यकता से ज्यादा भी संग्रह कभी न कर पाये।
जो कुछ है सत्य प्रिय है केवल उतना कह पाये।
मन, वाणी औ कर्म हमारे सदा नियन्त्रण में रखे—
जितना भी संभव हो संयम धारण कर हम रह पाये।

—दिलीप जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org